22174 - नमाज़ में आँखें बंद करने का हुक्म

प्रश्न

नमाज़ में आँखें बंद करने का क्या हुक्म है?

विस्तृत उत्तर

विद्वानों की इस बात पर सर्वसहमति है कि बिना आवश्यकता के नमाज़ में आँखें बंद करना मकरूह (घृणित) है। किताब ‘‘अर-रौज़ुल मुर्बे’’ के लेखक ने उसके मकरूह होने का स्पष्टता के साथ उल्लेख किया है क्योंकि वह यहूद के कृत्य में से है।’’ (अर-रौज़ुल मुर्बे 1/95) इसी तरह 'मनारुस्सबील' और 'अल-काफी' के लेखकों ने भी किया है और यह वृद्धि की है कि: क्योंकि इससे नींद आने की संभावना है। (मनारुस्सबील 1/66, अल-काफी 1/285) तथा किताब ‘‘अल-इक़्नाअ’’ के लेखक ने उसके मकरूह होने का स्पष्टता के साथ उल्लेख किया है, सिवाय इसके कि कोई आवश्यकता पड़ जाए, जैसे कि अगर उसे किसी निषिद्ध का भय हो कि वह अपनी लौंडी, या अपनी पत्नी या किसी परायी महिला को नंगी देखे। (अल-इक़्नाअ 1/127, अल मुग्नी 2/30) अल-मुग्नी के लेखक ने भी इसी तरह उल्लेख किया है।

जबकि 'तोहफतुल मुलूक' के लेखक ने उसके मकरूह होने का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है और आवश्यकता के होने और न होने की ओर संकेत नहीं किया है। (तोहफतुल मुलूक 1/84)

तथा अल-कासानी ने कहा है : ऐसा करना मकरूह है क्योंकि यह इस सुन्नत के खिलाफ है कि आँखों को सज्दा करने के स्थान पर केंद्रित होना धर्म संगत है, और इसलिए भी कि हर अंग का इबादत से उसका अंश और हिस्सा है और आँखें भी इसी तरह हैं।’’ (बदाये-उस्सनाये 1/503).

तथा 'मराक़िल फलाह' के लेखक ने उसके मकरूह होने का स्पष्टता के साथ उल्लेख किया है, सिवाय इसके कि कोई हित पाया जाता हो। और उन्हों ने कहा है कि : कभी कभी आँखें बंद रखना, देखने से बेहतर होता है। (मराक़िल फलाह 1/343).

तथा इमाम अल-इज़्ज़ बिन अब्दुस्सलाम ने अपने फतावे में आवश्यकता के समय उसके जायज़ होने को कहा है यदि वह नमाज़ी के लिए उसकी नमाज़ में अधिक विनम्रता का कारण है। तथा इब्नुल क़ैयिम ने ज़ादुल मआद में यह स्पष्ट किया है कि यदि इन्सान दोनों आँखें खुली रखने की हालत में अधिक विनम्रता वाला होता है तो यही बेहतर है। और यदि उसका आँखें बंद रखना ही अधिक विनम्रता का कारण है, नमाज़ से ध्यान को फेरने वाली किसी चीज़ के मौजूद होने की वजह से जैसे बेलबूटे और श्रृंगार, तो निश्चित रूप से ऐसा करना मकरूह नहीं है, बल्कि आँखे बंद करने के मुसतहब होने का कथन शरीअत के उद्देशों और उसके सिद्धांतों से, उसके मकरूह कहने से अधिक क़रीब है।’’ (ज़ादुल मआद 1/283).